'समर शेष है' उपन्यास में मानवाधिकार का हनन और संघर्ष चेतना

लिट्टी योहन्नान
अध्यापिका
एम.टी.एच.एस.चन्नापेटा
कोल्लम, केरल
Mob: 9496609298
E-mail: litty08@gmail.com

वर्तमान मानव कोलाहल भरे समाज में जीवन जी रहा है, परिणाम स्वरूप साहित्य में भी वही हलचल रेखांकित हुआ जाता है। समसामायिक जीवन का यथार्थ इतना सूक्ष्म, जटिल एवं अदृश्य है कि उसको पकड़ पाना रचनाकारों केलिए सबसे बड़ी चुनैती है। विपरीत परिस्थितियों में हमें जीवन व्यतीत करने का कोई रास्ता नहीं दिख पा रहा है। हमारे चारों तरफ असुरों का जमघट है। वे हमें अपनी इच्छा, आशा और आकांश के अनुसार जीने नहीं देते। फिर भी हम जी रहे हैं। इस प्रकार की गतिविधियो को यदि किसी साहित्य विधा ने सूक्षमता ने चित्रित किया है, तो वह है उपन्यास साहित्य।

मानवाधिकार, किसी भी इंसान की ज़िदगी, आज़ादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार है। अंतराष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस प्रत्येक वर्ष 10 दिसंबर को मानवीय अधिकारों को पहचान देने और वजूद को अस्तिव में लाने के लिए तथा अधिकारों के लिए जारी हर लडाई को ताकत देने के लिए मनाया जाता है। संपूर्ण विश्व में मानवता के खिलाफ को रहे जुलमें – सितम को रोकने, उसके खिलाई संघर्ष को नई आवाज देने में इस दिवस की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मानव अधिकार के अनेक प्रकार होते हैं, जैसे समानता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, नौकरी का अधिकार, शोषण के खिलाफ लड़ने का अधिकार आदि। समकालीन हिन्दी साहित्याकारों में जिन विशिष्ट साहित्याकारों की चर्च की जाती है उनमें अब्दुल बिस्मिल्लाह प्रमुख है। बिस्मिल्लाह जी एक उच्च कोटि के प्रतिभावान व्यक्ति है। वे नई पीढ़ी के बहुचर्चित और प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में अधिकतर जीवनानुभव दृष्टिगोचर होते हैं। उनके व्यक्तित्व के संबन्ध में अगर हम कहना चाह तो कह सकते है कि उन्होंने शून्य में से विश्व निर्माण किया है। मानव समाज में संघर्ष सार्वकालिक और सार्वमौमिक रहा है, पर प्रत्येक देश और समाज में इसके स्वरूप में कुछ भिन्नता रह है। संघर्ष के स्वरूप का विवेचन करते हुए डॉ. रामेश जाधव लिखते है – "संघर्ष कौदुंबिक, आर्थिक, धार्मिक, राजकीय, वांशीक, जातीय आदि रूपों में दृष्टिगोचर होता है।"[1] अब्दुल बिसमिल्लाह के उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्ग एवं घटकों में अपने मामूली अधिकार केलिए संघर्ष – चेतना परिलक्षित होती है।

अब्दुल बिसमिल्लाह के अब तक प्रकाशित सात उपन्यास हैं। वे इस प्रकारं हैं – 'समर शेष है' (1984), 'झीनी झीनी बीन बदरिया' (1986), 'जहरबाद' (1987), लेखन कम की दृष्टि से पहला, 'दन्तकथा' (1990), 'मुखडा क्या देखे' (1996), 'अपवित्र आख्यान' (2008) और 'रावी लिखता है' (2010)।

'समर शेष है' लेखन दृष्टि से अब्दुल बिस्मिल्लाहजी का दूसरा आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन 1984 में हुआ। 'जहरबाद' उपन्यास की कथा जहाँ समाप्त होती है वहीं से प्रस्तुत उपन्यास की कथा शुरु होती है। विवेच्य उपन्यास में छत, रोटी और अस्तित्व के संघर्ष में पकते हुए युवक की व्यथा – कथा को प्रस्तुत किया गया है। बिस्मिल्लाजी ने उपन्यास के अंतिम पृष्ठ पर उपन्यास के संबन्ध में लिखा है, कि – "विरपीय स्थितियों के बावजूद संकलप और संघर्ष के गहरे तालमेल से मनुष्य जिस जीवन का निर्माण करता है, यह कृति उसी की सार्थक अभिव्यक्ति है।"[2] कथानायक 'मैं' मातृविहीन चालक है जो पिता के सान्निध्य में भविष्य का सुंदर स्वप्न देखता है परन्तु गरीबी तथा रिश्तेदोरों के कारण पूरा नहीं हो पाता और जब पिता भी पुत्र की चिन्ता में निःशेष हो जाते हैं तो रह जाता है केवल 'मैं' उसकी गरीबी, लाचारी, भयावहता, रिश्तेदारों द्वारा दी गयी दुत्कार, शोषण, असफल प्रेम, संघर्ष, और भूखमती। प्रस्तुत उपन्यास में कथानायक के बचपन से लेकर जवानी तक की जीवनगाथा को अंकित किया गया है।

समर शेष है के कथा – नायक के पिताजी कथा नायक की ज़िंदगी को भतीजे नज़ीर के हवाले सौंप देते हैं। भैया – भाभी के परिवार में कथा-नायक को विभिन्न समस्याओं को झेलना पड़ता है। शायद कथा – नायक की ज़िंदगी का यह अंतिम फैसला था। उसे इस बात का एहसास बोध हुआ था कि उसे पढ़ने – लिखने से वंचित रहा जायेगा और उससे मजूरी की करायी जाएगी। उससे इस जीवन में स्वतंत्रता के अभाव के परिणामस्वरूप निर्मित स्थिति को चुपचाप स्वीकार लेना ही एकमात्र विकल्प था उसके अलावा कोई दूसरा विकल्प, अप्राप्य था। कथा – नायक अनुभव करता है – "भाग्य जिसे कहरे हैं, वह यही है और खुदा जिसे कहते हैं वह बह यही कर सकता है। अब आदमी के भीतर अगर दम हो तो लड़े इनसे।"[3] स्पष्ट है कि जिस उम्र में स्वतंत्रता के साथ जीवन जीना अपेक्षित होता है उसी उम्र में कथा – नायक के स्वतंत्रता संबंधी अधिकारों को अपने ही भाई – भाभी से छीना जाता है। परिणामस्वरूप उसे अनेक असह्य काम करने पडते है। भाई – भाभी से अधिकारों का छीना जाना

-3-

और कथानायक की संघर्षमय जिंदगी का आरंभ होना निश्चित ही गौरतलब कहना होगा।

समय शेष है के कथानायक की जिंदगी बहुआयामी बवंडरों से गुजरती है। वह इसी सिलसिले में लालगंज जाना चाहता है। लालगंज जानवाली आखरी बस चली जाने के कारण बस – स्टेश्न के प्रतीक्षालय में लेटता है। पुलिस उसकी पूछताछ करती है। पुलिस के पूछताछ करने पर कथानायक कहता है – "देखिए साहब, मैं चोर उचक्का नही हूँ। मैं एक विद्यार्थी हूँ। हाँ मैं गरीब जरूर हूँ। आप मुझे परशान न कीजिए, आराम करने दीजिए, मैं सुबह वहाँ से चला जाऊँगा।"[4] जिन रक्षकों से हम सुरक्षा की अपेक्षा रखते है वे ही हमारे अपने अधिकारी को छीनकर भक्षक बन जाते है। पुलिस कथानायक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं थी। कथानायक बार – बार समझाने का प्रयास कर रहा था। अक्सर पुलिसवाले उससे पैसे की माँग करते है लेकिन उसके पास देने के लिए कुछ नहीं है। जो भी था जीवन जीने का अधिकार ही था और वह भी पुलिस द्वारा छीना जाता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के समर शेष है में मानव के अपने अधिकार के लिए किए गए संघर्ष का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने डॉ. नगेंद्र की पुस्तक अर्द्धकथा के विमोचन समारोह में (17 अगस्त 1981) कहा है – "आत्मकथा लेखन एख प्रकार का आत्मसाक्षात्कार है जिसके लिए साहस की आवश्यकता होती है।"[5] यह साहस हमें बिस्मिल्लाह जी में दृष्टिगोचर होता है। कथा नायक अपने संघर्षमयी जीवन में दर – दर की ठोकरों खाने के बाद पुनः मोहम्मद भैया के पास चला जाता है, तभी भाभी आलू ठीक से न छीलने के कारण उस पर उखड़ जाती है – "कल जब हक – हिस्से के माँग करेंगे तो सारा छोहाना एक ही दिन में निकल जाएगा।"[6] भाभी के कथन को सुनकर कथा – नायक कहता है- "हक- हिस्से पर विचार करने का समय कहाँ था। अधिकार की लडाई से ज्यादा ज़रूरी जिंदगी की लडाई थी।"[7] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि कथा – नायक और भाभी में प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप में अधिकारिक संघर्ष होता है।

कथा नायक अपने कर्मशील जीवन में होटल में काम करता था। वह कहता है- "मेरे खा चुकने का बाद मालिक ने मुझसे इस तरह पूछा जैसे आराम करने का अधिकार सिर्फ मालिकों को ही होता है और नैकर अगर आराम करें तो मालिकों की मर्जी उसमें शामिल होनी चाहिए।"[8] कथा – नायक आराम तो करना चाहता था। लेकिन यहाँ बात स्पष्ट हो जाती है कि आज भी हमारे समाज में मालिक लोग अधिकार जमाने का भरसक प्रयास करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। लेखक मालिकों की अधिकार वृत्ति की ओर समाज का लक्ष्य केंद्रित करना चाहता है। कथा – नायक को

-4-

संघर्ष करने के पहले ही अधिकार मिल जाता है। लेकिन यहाँ संघर्ष की स्थिति अवश्य उत्पन्न हुई परिलक्षित होती है।

कथानायक अपने दयनीय जीवन में नौकरी ढूँढने के सिलासिले में एक सरकारी ऑफिस में पहूँचता है। वहाँ के बड़े बाबू कथा – नायक से पूछताछ करते है और कहते है – "जो काम अठारह वर्ष का व्यक्ति कर सकता है, उसे सोलह या सत्रह वर्ष का व्यक्ति शायद नहीं कर सकता – यह नियम अगर सरकार द्वारा निर्मित है तो ठीक ही होगा, मैंने उस वक्त, सिर्फ इतना ही सोचा और पिघलते हुए कोलतार पर चल पड़ा।"[9] कथानायक की उम्र उस समय सोलह वर्ष की थी। कथानायक अधिकार से नौकरी माँगने

जाता है लेकिन इस नियम के कारण उसे उस सरकारी दफतर में नौकरी नहीं मिल पाती। लेकिन वह गुस्से में आकर सोचता जरूर है कि यदि यह नियम सरकार द्वारा बनाया गया हो तो ठीक होगा। स्पष्ट है कथानायक में नौकरी प्राप्त करने केलिए संघर्ष उत्पन्न होता है लेकिन परिस्थिति के आगे वह कुछ नहीं कर सकता।

अपेक्षाओं की पूर्ति न होना व्यक्ति तथा समाज का खोखला बन जाना है और खोखलेपन से वह संघर्ष के लिए बाध्य होता है। यहाँ बीना बंसल का कहना सही ही है – "निम्नवर्ग का व्यक्ति समाज में रहते हुए भी सामाजिक – आर्थिक व्यवस्था से लाभ नहीं उठा पाता और न ही अपना जीवन स्तर ऊँचा उठा पाता है।..... उसके भीतर घुटन विद्रोह बनकर बाहर आती है।"[10] समर शेष हैं का कथानायक अर्थाभाव के कारण अपने बुढ़े पिताजी को दूध पिलाने की इच्छा भी पूरी नहीं कर पाता। इसी इच्छा की आपूर्ति उसे संघर्ष के लिए विवश करती परिलक्षित होती है। यहाँ कथा नायक की स्वीकारोक्ति है – "बेटा, थोड़ा दूध मुझे पिला सकते हो? उन्होंने अत्यंत दयनीय होकर यह सवाल किया, लेकिन कोई निश्चयात्मक उत्तर मेरे पास नहीं था।"[11] स्पष्ट है कि कथानायक के पिताजी ने तो अभावग्रस्त दिनों को अनुभव किया था। लेकिन उन्होंने अंतिम समय में अपनी कुंठित इच्छा बेटे के सामने प्रस्तुत की। पिताजी की मामूली इच्छा होते हुई भी पुत्र वह पूरी नहीं कर सका। क्योंकि आर्थिक अभाव परम्परागत सत्य और संपत्ति के रूप में कथानायक के परिवार को मिला है, करने में संघर्ष चलता है किन्तु हर कही मानवाधिकार कर हनन का विष पीना पडता है।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि समर शेष है अब्दुल बिस्मिल्लाहजी का एक सफल उपन्यास है जो आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। बिस्मिल्लाह जी का जीवन, चिंतन और कार्य मानव अधिकारों के लिए संघर्ष का खुला दस्तावेज है जिससे अनेक व्यक्ति अपने अधिकारों को करने केलिए, संघर्ष के लिए प्रेरित होता है। यह

उपन्यास समाज के किसी भी इंसान को जीवन के प्रति आस्थावान होकर जीवन में आनेवाले मुश्किलों, बवंडरों और परेशानियों से लडने का और मंजिल तक पहूँचने के लिए दृढ़ विश्वास देता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रमेश जाधव – समाजशास्त्र – पृ. 175
2. अब्दुल बिस्मिल्लाह – समर शेष है, अंतिम पृष्ठ
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह – समर शेष है, 16
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह – समर शेष है, 111
5. डॉ. शंकर दयाल शर्मा – मंजुषा, पृ.17
6. अब्दुल बिस्मिल्लाह – समर शेष है, पृ.43
7. वही. पृष्ठ 43-44
8. वही. पृष्ठ 51
9. वही. पृष्ठ 59
10. बीना बंसल – नई कहानी में आर्थिक संघर्ष, पृ.72
11. अब्दुल बिस्मिल्लाह – समर शेष है, पृ. 22